प्रतक्ष्यवाद क्या है ?

“परिवर्तन के महान क्षण” एवं अनेकों sources,

ऑडियो /video

“प्रतक्ष्यवाद क्या है?” परम पूज्य गुरुदेव के 20 पुस्तकों के सेट “क्रांतिधर्मी साहित्य” की एक पुस्तक “परिवर्तन के महान क्षण” पर मूलरूप से आधारित है लेकिन अनेकों sources, ऑडियो /video आदि की भी सहायता ली गयी है

एक निवेदन

इस पुस्तिका को प्रस्तुत करते समय हमें अपनी अयोग्यता का संकोच तो अवश्य है लेकिन जिस सदुद्देश्य से प्रकाशन हो रहा है अवश्य ही लोकहितकारी होगा। इसी विश्वास के आधार पर एक उत्साह और आशा की लहर हमारे अंदर कौंध रही है। इस पुस्तक में दिए गए कंटेंट को प्रकाशन से पूर्व अनेकों बार पढ़ कर चेक किया गया है लेकिन फिर भी अनजाने में कोई त्रुटि रह गयी होगी जिसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। पाठकों से निवेदन करते हैं हैं कि अगर कोई भी त्रुटि नोटिस करें तो हमें तुरंत सूचित करें ताकि हम उस त्रुटि का निवारण कर सकें।

धन्यवाद

प्रतक्ष्यवाद क्या है?

“क्रांतिधर्मी साहित्य” को परम पूज्य गुरुदेव ने “मक्खन” का विशेषण दिया है। उसी मक्खन को और अधिक मथने के उपरांत जो ज्ञानप्रसाद प्रस्तुत प्राप्त हुआ है उसे हम बहुत ही श्रद्धा के साथ शांतिकुंज स्थित गुरुदेव के कक्ष में गुरुसत्ता के चरणों में समर्पित करने के बाद ही आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। इस ज्ञानप्रसाद का अमृतपान अवश्य ही बहुतों के जीवन में सार्थक क्रांति लाने में सहायक होगा। आइए विश्वशांति की कामना करें और प्रतक्ष्यवाद के विषय को जानने का प्रयास करें। “ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः ।सर्वे सन्तु निरामयाः ।सर्वे भद्राणि पश्यन्तु । मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् ॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम पूज्य गुरुदेव के दिव्य साहित्य में हस्तक्षेप करने का हमारा उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता और न ही कभी साहस कर सकते हैं लेकिन कुछ बेसिक definitions को समझना बहुत ही आवश्यक है। यह इसलिए आवश्यक है कि अगर हम बिना पूरी तरह, भलीभांति समझे पढ़ना आरम्भ कर देंगें यां फिर इस अंधी धारणा में रहते हुए कि हमें तो पता है (जबकि पता नहीं है) पढेंगें, तो फिर ज्ञानप्रसाद का अमृतपान ऐसी ही फीलिंग देगा जैसे कि हमने कुछ पढ़ा ही नहीं ,यां पढ़ा तो था लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ।

आज के ज्ञानप्रसाद में एक शब्द बार-बार आ रहा है और वह शब्द है “प्रतक्ष्यवाद”, बहुत से लोग कहते हैं कि हम तो इस शब्द का प्रतिदिन प्रयोग करते हैं और हमें इसका पता भी है। हो सकता है कुछ एक को जानकारी

हो भी लेकिन और विस्तार में जानने में कोई हर्ज़ भी नहीं है।

जब विस्तार की बात कर रहे हैं तो उतना ही जानने का प्रयास करेंगें जितना आज के सब्जेक्ट के लिए आवश्यक है क्योंकि प्रतक्ष्यवाद तो बहुत ही बड़ा विषय है।

तो क्या है प्रतक्ष्यवाद ?

प्रतक्ष्यवाद का अंग्रेजी अनुवाद Positivism है। Positive का हिंदी अनुवाद सकारात्मक है और Positivity सकारात्मकता है। हो सकता है Positivity और Positivism का कोई सम्बन्ध हो लेकिन हम इस controversy में न पड़ते हुए सीधा प्रतक्ष्यवाद की बात करते हैं।

प्रतक्ष्यवाद उस सिद्धांत को कहा जाता है जो केवल वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान को ही विश्वसनीय और प्रामाणिक मानता है। इस सिद्धांत के अनुसार जो

दिखाई देता है वही सच है। आध्यात्मिक गुरु तो आत्मा की बात करते हैं, चेतना की बात करते हैं, प्राण की बात करते हैं ; तीनों में से किसी को भी देखा नहीं जा सकता तो क्या यह सब झूठ है। कौन सा सिद्धांत है जो इन शक्तियों को समझने में आज के मानव की सहायता कर सकता है। ऐसे ही सिद्धांत को समझाने के लिए आते हैं हमारे गुरु परम पूज्य पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी जिन्होंने अपने शरीर को एक लेबोरेटरी की भांति प्रयोग करके प्रतक्ष्य दिखा दिया कि आओ देखो, परखो, टेस्ट करो और reproduce करो। साइंस में जब भी कोई नया प्रयोग किया जाता है, repetition, revision और reproduction के बिना उसकी कोई भी validity नहीं है। इस बात को भी हमारे गुरुदेव ने डंके की चोट पर कह कर सिद्ध कर दिया कि अगर मैं कर सकता हूँ तो आप क्यों नहीं कर सकते। तो हुई न एक अद्भुत

scientific research जिसमें मनुष्य शरीर को एक लेबोरेटरी की भांति प्रयोग किया गया है।

प्रत्यक्षवाद की वैज्ञानिक व्याख्या सर्वप्रथम ऑगस्ट कॉम्टे नामक फ़्रांसिसी समाजशास्त्री ने की है। कॉम्टे ने अपनी रचनाओं में यह दावा किया कि उसने मानव समाज के बेसिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसने विश्वास व्यक्त किया कि यदि इन नियमों को सही ढंग से कार्य रूप प्रदान कर दिया जाए तो मानव प्रगति एक "वैज्ञानिक तरीके" से विकसित होकर अपने पूर्णत्व (perfection) को प्राप्त हो सकती है। कॉम्टे को यह विश्वास था कि मानव का विकास जब पूर्णता को प्राप्त हो जाएगा तब समस्त प्राचीन मान्यताएं, परम्पराएं एवं नवीन मूल्य समाप्त हो जाएंगे और उनका स्थान नवीन परम्पराएं, मान्यताएं व मूल्य ले लेंगे

जिसमें राज्य का स्वरूप तथा समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक रूप-रेखा में बदलाव आ जाएगा।

कॉम्टे ने बताया कि perfection की स्थिति तक पहुँचने के लिए तीन चरणों से होकर गुजरना पड़ता है।

1. मिथ्यापूर्ण अवस्था
2. अधिभौति, अनुमान अवस्था
3. वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी अवस्था।

प्रथम अवस्था में मनुष्य इस बात में विश्वास करता है कि सृष्टि के निर्माण में प्राकृतिक शक्तियों या देवी-देवताओं का हाथ है अर्थात् वह समस्त घटनाओं की व्याख्या अलौकिक (divine)या आध्यात्मिक शक्तियों (spiritual forces) के सन्दर्भ में ही कहता है। दूसरी अवस्था में समस्त घटनाओं की व्याख्या अनुमान (guess work) के आधार पर की जाती है। मनुष्य इस सृष्टि के निर्माण में "आत्मा" जैसे सूक्ष्म तत्वों पर विचार

करने लगता है। यह अवस्था पुरानी अवस्था के स्थान पर नई अवस्था की भूमिका तैयार करने के कारण प्रत्यक्षवाद की भूमिका तैयार करने का काम करती है। मानव सोचने लगता है कि शायद आत्मा जैसी कोई वस्तु भी कहीं exist करती होगी। जब “शायद” जैसा शब्द प्रयोग में आ जाये तो फिर guess-work ही हुआ। तीसरी अवस्था में मनुष्य यह विश्वास करने लगता है कि इस प्रकृति की सारी घटनाएं unknown प्राकृतिक नियमों से बंधी पड़ी है। प्रतक्ष्यवाद की अवस्था में मानव मन सृष्टि व जगत के निर्माण के बजाय उसकी कार्य प्रणाली, नियम और तर्क बुद्धि की व्यवहारिक बातें सोचना आरम्भ करता है। वह उसी में विश्वास करता है जिसे देख रहा है। अगर वह किसी अमीर व्यक्ति को देखता है तो उसकी अमीरी में

विश्वास तो कर लेता है लेकिन उस अमीरी की सच्चाई के बारे में जानने की बिल्कुल कोई परवाह नहीं करता।

“कॉम्टे ने विश्वास व्यक्त किया है कि प्रत्यक्ष अवस्था ही मानव विकास की अन्तिम अवस्था होगी और यह अवस्था उतनी शीघ्रता से प्राप्त की जा सकेगी जितनी शीघ्रता से धार्मिक विश्वासों का अन्त होगा और जनसाधारण वैज्ञानिक ढंग से सोचने की प्रक्रिया को अपना लेगी।”

यह इसी प्रगति का ही परिणाम है कि आज मानव समाज में धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति जागृति को बढ़ावा दिया जा रहा है, लोग नए सिरे से सोचने पर विवश हो रहे हैं और जनता में वैज्ञानिक सोच का विकास हो रहा है

काम्टे ने कहा है कि वास्तविक (Real, Actual) वही है जो हम देखते हैं, सुनते हैं तथा अपने जीवन में प्रयुक्त

करते हैं। उसके अनुसार सभी मनुष्यों में निरीक्षण की एक जैसी क्षमता पाई जाती है जिससे हम अपने अनुभव को दूसरों के अनुभव से मिलाकर उसकी पुष्टि कर सकते हैं। इस पुष्टि के बाद यही अनुभव एवं तर्क और कथन बन जाते हैं। यही कारण है कि उन तमाम बातों का विरोध होता है जहाँ मानवी मूल्यों का विषय आता है। मानवीय मूल्य भी प्रतक्ष्य दिखते तो हैं लेकिन उन्हें यथार्थवाद, प्रतक्ष्यवाद की दौड़ में पीछे छोड़ दिया जाता है। किसके पास इतना समय है ,साहस है,विवेक है कि वह आने वाली पीढ़ी को संस्कारवान बनाने का उत्तरदाईत्व निभा सके। ज़रा स्थिर होकर,बैठकर ठन्डे दिमाग से सोचिये कि आज का मानव किस और भाग रहा है और क्या हम कुछ करने में समर्थ हैं ? “क्रांतिधर्मी साहित्य” पर आधारित परम पूज्य गुरुदेव के मार्गदर्शन में, उन्ही की प्रेरणा से,प्रस्तुत

किये जाने वाले ज्ञानप्रसाद लेख अगर इस दिशा में क्रांति ला पाए तो ही इस परिवार के योगदान को सार्थक समझा जाना चाहिए। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह दिव्य लेख अनेकों पारिवारिक समस्याओं के निवारण में सहयोगी सिद्ध होंगें।

परम पूज्य बताते हैं कि बीसवीं सदी का अन्त (1901 से 2000) आते-आते समय सचमुच बदल जायेगा।

एक वोह समय था जब सम्वेदनाएँ (Feelings, Emotions) इतनी समर्थता प्रकट करती थीं कि मिट्टी के द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धनुष विद्या में प्रवीण-पारंगत कर दिया था। मीरा के कृष्ण दीवानी मीरा के बुलाते ही उसके साथ नृत्य करने के लिए आ पहुँचते थे। गान्धारी ने पतिव्रत भावना से प्रेरित होकर आँखों में पट्टी बाँध ली थी और आँखों में इतना प्रभाव भर लिया था कि दृष्टिपात करते ही दुर्योधन का शरीर अष्ट-धातु

का हो गया था। यह वोह समय था जब शाप शस्त्र प्रहारों की भांति और वरदान बहुमूल्य उपहारों जैसा काम करते थे। यह भाव-सम्वेदनाओं का चमत्कार था। उसे एक सच्चाई के रूप में देखा और हर कसौटी पर सही पाया जाता था।

और एक आज का वर्तमान समय है जिसमें भौतिक जगत ही सब कुछ रह गया है, यथार्थवाद और प्रतक्ष्यवाद ही सब कुछ है। आत्मा तिरोहित (गायब) हो गई है । शरीर और विलास-वैभव ही सब कुछ बनकर रह गए हैं। यह प्रत्यक्षवाद का युग है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है कि अगर कोई expert बाज़ीगरों की तरह, कठपुतलियों के नाच की भांति अपने करतब दिखा सकता, हमें नचा सकता है, वही सबसे बड़ा समझा जाता है। हर कोई यही सोचता है कि जो प्रतक्ष्य है, दिखाई दे रहा है, वही सच है। इस

सच को देखने के लिए, प्राप्त करने के लिए, मानव उस हद तक गिरे जा रहा है जिसकी कोई सीमा नहीं। प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए, इन परिणामों को प्राप्त करने के लिए मानव को जितनी भी प्रतीक्षा करनी पड़े, कुछ भी दाव पर लगाना पड़े, परिवार जाये भाड़ में, आज के मानव को सब मंज़ूर है।

आज के प्रतक्ष्यवाद के युग में जहाँ सच वही है जो दिखाई देता है, तो आत्मा जो दिखाई नहीं देती, उसका अस्तित्व ही समाप्त हुआ लगता है। परमात्मा को भी अमुक शरीर धारण किए हुए, अमुक स्थान पर बैठे हुए और अमुक हलचलें करते देखा नहीं जाता इसलिए उसकी भी मान्यता समाप्त कर दी गई, लेकिन एक तथ्य जिसको नकारना लगभग असंभव ही है और वह है “समय।” प्रतक्ष्यवाद का ढिंढोरा पीटने वालों को जब समय की ठोकर लगती है तो वह मंदिरों और दरगाहों

में नाक रगड़ते और धर्मगुरुओं के समक्ष नोटों के ढेर लगाने को विवश हो जाते हैं लेकिन “अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत” भौतिक विज्ञान (Physical Science) चूँकि प्रत्यक्ष पर निर्भर है तो मानव उसी को ही सच मानता है जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। चेतना (consciousness) और श्रद्धा में कभी शक्ति की मान्यता रही होगी, लेकिन आज के युग में यह शक्ति इसलिए गायब हो गई है कि न तो चेतना को और न ही श्रद्धा को बटन दबाकर प्रकाश की भांति देखा जा सकता है या switch on किया और पंखा चलने लगा, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता उसे कोई मानता ही नहीं। भौतिक विज्ञान और प्रतक्ष्यवाद की फिलासफी के कारण परिवर्तन का लाभ तो अवश्य हुआ है कि अन्ध-विश्वास जैसी मूढ़-मान्यताओं के लिए गुंजायश नहीं रही

और हानि यह हुई कि नीतिमत्ता (ethics), आदर्शवादिता (idealism), धर्म-धारणाओं को लगभग अस्वीकार ही कर दिया गया। इस परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि मानवी गरिमा (Human dignity) के अनुरूप अनुशासन लगभग समाप्त होने को है।

प्रतक्ष्यवाद की नई मान्यता के अनुसार मनुष्य एक चलता-फिरता पौधा मान लिया गया। अधिक से अधिक उसे वार्तालाप कर सकने की विशेषता वाला पशु माना जाने लगा। वर्ष 1998 में प्रकाशित परम पूज्य गुरुदेव की बहुचर्चित पुस्तक "मनुष्य एक चलता फिरता पेड़ नहीं है" में बहुत ही अच्छी तरह से समझाया गया है कि मनुष्य को चलता फिरता पौधा क्यों नहीं कहा जा सकता। अनेकों उदाहरण देकर पूज्यवर इस विषय को समझा रहे हैं। उचित तो यही है कि 128 पन्नों की

पुस्तक को किसी और समय के लिए पोस्टपोन किया जाए और चलते फिरते पौधे के विषय पर उतनी ही चर्चा की जाये जितनी यहाँ आवश्यक है।

क्या आत्मा शरीर से अलग है कि नहीं ?

गुरुदेव बताते हैं कि एक प्रश्न जो सदियों से अब तक उलझता हुआ आ रहा है वह है कि "क्या आत्मा शरीर से अलग है या नहीं ? अगर सच में है तो आत्मा का अलग अस्तित्व है या नहीं। भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने प्रत्यक्ष को प्रमाण के आधार पर इस मान्यता से इन्कार किया है कि "चेतना" कोई ऐसा तत्व है जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो शरीर नष्ट हो जाने के बाद भी बना रहता है और अनेक योनियों में विचरण करता हुआ अपनी सनातन जीवन यात्रा पूर्ण करता रहता है। दूसरी ओर साधकों संतों तपस्वी और योगियों ने अपनी अन्तरंग अनुभूतियों के आधार पर आत्म-तत्व का

अनुवाद किया है और उसे जीवन सत् कह कर उसे देखने सुनने और प्राप्त करने को ही परमार्थ, जीवन लक्ष्य कहा है। आइए ज़रा देख लें कि आत्मतत्व कौन सा तत्व है।

आत्मतत्व क्या है?

हमारी श्वांस जो प्रतिपल, प्रतिक्षण अनवरत चल रही है यह शुद्ध और निर्विकार, अदृश्य तत्व है। यह संपूर्ण शरीर में व्याप्त है। ध्यानावस्था में एकांत में बैठकर श्वांस की गति पर ध्यान रखते हुए इस तत्व के बारे में जाना जा सकता है। श्वांस का चलना ही जीवन है, इसका रुक जाना मौत है। श्वांस कब तक चलेगी किसी को पता नहीं, जीवन यात्रा कब तक चलेगी किसी को पता नहीं लेकिन इस यात्रा का आनंद वही ले सकता है जिसे आत्मतत्व का ज्ञान हो और इस तत्व का ज्ञान गुरु ही करा सकता है। आत्मज्ञान हो जाने के बाद मनुष्य

अपने स्थूल शरीर से अलग भी जीता है। वहां मोह, सुख-दुख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क कुछ भी नहीं रहता। वह स्वयं सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ और अंतर्यामी हो जाता है।

प्रत्यक्षवादी तो केवल उसी पर विश्वास करते हैं जो दिखता है और अदृश्य को देख न पाने के कारण कई बार आस्थावादी बुद्धि भी चकराती है यही कारण है कि यह प्रश्न अनादि काल से उलझता-सुलझता चला आ रहा है। प्रश्न इतना मार्मिक और महत्वपूर्ण है कि उसे बिना किसी उत्तर प्राप्त किये छोड़ा जाना भी मानव जीवन के हित में नहीं है।

"यह युग विज्ञान का युग है, विज्ञान ने अदृश्य, अप्रकट को स्पष्ट करने का एक बहुत बड़ा कार्य किया है। सच पूछा जाये तो उसने भारतीय दर्शन के आत्मावादी सिद्धान्त को पूरी तरह पुष्ट भी कर दिया है किन्तु प्रायः विज्ञान जिन के पास है उन्हें अध्यात्म दर्शन के सामीप्य

का अवसर नहीं मिला अतएव सूक्ष्म की रिसर्च करने के बावजूद वैज्ञानिकों के सम्मुख भी यह प्रश्न उलझा का उलझा ही रह गया। इसे इस युग की एक अद्भुत उपलब्धि कहा जाना चाहिए कि मानवीय अन्तःकरण ने विज्ञान की संगति अध्यात्म से मिलाकर इस महत्व पूर्ण प्रश्न को सुलझाने का यत्न किया। जब प्रतक्ष्यवादी आत्मा को मानते ही नहीं हैं, संवेदनाओं में विश्वास ही नहीं करते तो प्राणीओं के वध करने को, निर्दयता और निष्ठुरता को आरोप क्यों समझा जाये, अनुचित और अधार्मिक क्यों माना जाए। आधुनिक विज्ञान युग में ऐसा दिखता है कि कद्दू-बैंगन की तरह किसी भी पशु-पक्षी को माँसाहार के लिए प्रयोग किया जा सकता है। दूसरे की पीड़ा जब हमें स्वयं को अनुभव नहीं होती और मांसाहारी आहार में अधिक प्रोटीन होने और प्रतक्ष्यवादी अपने शरीर को लाभ मिलने की बात कहने

लगें तो कोई प्राणीवध को इसलिए क्यों अस्वीकार करे कि उसके कारण नीति और प्रकृति का अनुशासन बिगड़ता है तथा भावनाएँ विचलित होती हैं। जिस प्रकार इस मानवी मर्यादा को अनुचित नहीं समझा जाता ठीक यही बात अन्य मानवी मर्यादाओं के सम्बन्ध में भी हैं। अपराधों के लिए द्वार इसीलिए खुला कि उसमें मात्र दूसरों की हानि होती है। अपने को तो तत्काल लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है। अन्य विचारों में भी पशु-प्रवृत्तियों को अपनाए जाने के सम्बन्ध में जो तर्क दिए गए और प्रतिपादन प्रस्तुत किए गए हैं, उन्हें देखते हुए यौन सदाचार (celibacy) के लिए भी किसी पर कोई दबाव नहीं पड़ता। जब इस सम्बन्ध में पशु सर्वथा स्वतन्त्र हैं तो मनुष्य के लिए ही क्यों प्रतिबन्ध होना चाहिए। (क्या हम पशु हैं ?) जीव जगत में जब धर्म, कर्तव्य, दायित्व जैसी कोई मान्यता

नहीं, तो फिर मनुष्य ही उन जंजालों में अपने को क्यों बाँधे? प्रकृति के नियम अनुसार जब बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है, जब बड़ी चिड़िया को छोटी चिड़ियों पर आक्रमण करने में कोई हिचक नहीं होती, जब चीते, हिरन आदि कमजोरों को दबोच लेते हैं तो फिर समर्थ मनुष्य अपने से असमर्थजनों का शोषण करने में क्यों चूकें?

एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यदि प्रत्यक्षवाद ने, भौतिक विज्ञान ने मानव की सुख सुविधा के लिए नए-नए आधार दिए हैं, तो उसकी उपयोगिता और यथार्थता पर क्या किसी को सन्देह करना चाहिए? यदि आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्तव्य, पुण्य, परमार्थ जैसी मान्यताओं के आधार पर कोई लाभ हाथों-हाथ नहीं मिलता तो फिर व्यर्थ ही उन बन्धनों को क्यों माना जाए जिनके कारण मनुष्यों को तात्कालिक घाटे में ही

रहना पड़ता है। समर्थ तो कभी भी इस पद्धति को मानने को तैयार नहीं होंगें क्योंकि इसके कारण उन्हें शोषण का शिकार बनना पड़ता है। वोह तो Eat, drink and be merry की पद्धति को ही अपनाते देखे गए हैं। जब कोई आध्यात्मिक प्रवृति वाला मनुष्य आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्तव्य, पुण्य, परमार्थ जैसी मान्यताओं की बात करता है तो प्रतक्ष्यवादी उसका मज़ाक उड़ाता है और सीधा यही प्रश्न पूछता है "आपको क्या मिल गया जो आप मुझे प्रवचन दे रहे हो?" वोह तो सीधा यही तथ्य देगा कि अगला जन्म किसने देखा है, जो वर्तमान में भोग लिया वही सब कुछ है। ऐसे मनुष्य भोग-विलास, ऐश-परस्ती, धन उपार्जन आदि में ही इस मूल्यवान जीवन का नाश किये जाते हैं।

विज्ञान और प्रत्यक्षवाद ने क्या सचमुच हमें सुखी बनाया है?

जहाँ समय का बदलाव, वैज्ञानिक उपलब्धियां प्रदर्शन करने के रूप में लाभदायक प्रतीत होती हैं तो तप, संयम, परमार्थ जैसी उन मान्यताओं को क्यों स्वीकार कर लिया जाए, जो आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता की दृष्टि से कितनी ही सराही क्यों न जाती हो, लेकिन तात्कालिक लाभ की कसौटी पर उनके कारण घाटे में ही रहना पड़ता है। समय- समय पर दिए जाने वाले नए समय के नए तर्क, अपराधियों- स्वेच्छाचारियों से लेकर हवा के साथ बहने वाले मनीषियों तक को समान रूप से अनुकूल दिखाई देते हैं और मान्यता के रूप में अंगीकार करने में भी सुविधाजनक प्रतीत होते हैं। जब यह तर्क सभी को ठीक ही लग रहे हैं तो उन्ही को स्वीकार क्यों न कर लिया

जाए ? उसी दिशा में क्यों न चला जाए जिसमें majority जा रही है ? जर्मन फिलॉस्फर Friedrich Nietzsche ने दृढ़तापूर्वक घोषणा की है कि “तर्क के इस युग में पुरानी मान्यताओं पर आधारित ईश्वर मर चुका है। अब उसे इतना गहरा दफना दिया गया है कि भविष्य में कभी उसके जीवित होने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।” धर्म के सम्बन्ध में भी प्रत्यक्षवादी अधिकतर बुद्धिजीविओं ने यही कहा है कि धर्म केवल अफीम की गोली भर है, जो पिछड़ों को त्रास सहते रहने के लिए बाधित करता है, और अनाचारियों को निर्भय बनाता है ताकि लोक में अपनी चतुरता और समर्थता के बल पर वे उन कार्यों को करते रहें, जिन्हें अन्याय कहा जाता है। परलोक का प्रश्न यदि आड़े आता हो तो वहाँ से बच निकलना और भी सरल है। किसी देवी-देवता की पूजा कर देने, धार्मिक कर्मकाण्ड का

सस्ता-सा आडम्बर बना देने भर से पाप-कर्मों के दण्ड से सहज छुटकारा मिल जाता है। जब इतने सस्ते में तथाकथित पापों की प्रतिक्रिया से बचा जा सकता है तो रास्ता बिल्कुल साफ है। मौज से मनमानी करते रहा जा सकता है और उससे कोई कठोर प्रतिफल की आशंका हो तो पूजा-पाठ के सस्ते खेल-खिलवाड़ से वह आशंका भी निरस्त हो सकती है।

हमारे पाठक अनुभव कर रहे होंगें कि परम पूज्य गुरुदेव ने कितनी सरलता से प्रतक्ष्यवाद को वर्तमान युग के परिपेक्ष्य में समझाने का प्रयास किया है। इन पंक्तियों को लिखते समय हमें तो एक-एक शब्द आज के युग का ही लग रहा है। हम अपने आसपास यही कुछ तो देख रहे हैं, यही कारण है कि ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार के प्लेटफॉर्म पर कुछ भटके हुए मानवों द्वारा इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। इसमें उनका कोई

कसूर नहीं है, समय ही ऐसा है। प्रतक्ष्यवाद और अध्यात्मवाद, जो एक दुसरे के विरोधी हैं ऐसे मनुष्यों को कुछ भी सार्थक सोचने को प्रेरित नहीं कर पाते और ईश्वर द्वारा वरदान रुपी मनुष्य जीवन ऐसे ही व्यर्थ नष्ट होता जाता है। यहाँ आता है ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार का भरपूर सहयोग एवं योगदान जिसे अनेकों परिवारों की सराहना मिल रही है।

वर्तमान युग का मानव दिनों दिन हो रही वैज्ञानिक प्रगति के कारण प्रत्यक्षवाद का समर्थक होता जा रहा है। सच तो यह है कि धर्मगुरु भी निजी जीवन में अधर्मी और नास्तिक कार्य करते देखे जाते हैं। ऐसे धर्मगुरु ईश्वर को भी न्यायकारी-सर्वव्यापी नहीं मानते। यह स्थिति बहुत ही भयानक है। विज्ञान ने अनेकों प्रकार के gadgets देकर हमारा जीवन सुखमय तो बनाया है लेकिन इस सुख की हमें भारी कीमत चुकानी

पड़ी है। इस वैज्ञानिक प्रगति के आभाव में हम भी कठिनाइयों और अभाव वाला भौतिक जीवन जीते, हमारी भौतिक या आध्यात्मिक स्थिति खिन्न-विपन्न न होती । परम पूज्य गुरुदेव इसका एक जीवंत उदाहरण हैं, जिनसे हम सदैव प्रेरणा लेते हैं। सच तो यह है कि गुरुदेव ने आज के तथाकथित सुखी समृद्ध लोगों की तुलना में कहीं अधिक सुख-शान्ति भरा प्रगतिशील जीवन जिया है जिसमें सदैव ऐसा वातावरण बना रहता था जिसे सतयुग के रूप में जाना जाता था और जिसको पुन: प्राप्त करने के लिए हम सब तरसते हैं।